समस्या व्यक्ति निर्माण की

उज्ज्वल भविष्य की कामना सभी करते हैं, किन्तु उसके लिए उज्ज्वल चरित्र सम्पन्न व्यक्ति चाहिए। जिनके मन-मस्तिष्क में हीन भाव और ओछे विचार भरे हैं, उनसे उज्ज्वल भविष्य के निर्माण की आशा कैसे की जा सकती है? अच्छे व्यक्ति सबको चाहिए, परन्तु उन्हें गढ़ा, खरादा कहाँ जाय?

युगऋषि ने इस समस्या का समाधान दिया है। इसीलिए उन्होंने व्यक्ति निर्माण के साथ परिवार निर्माण की जरूरत बताई है। परिवार को उन्होंने व्यक्ति निर्माण की टकसाल, चरित्र निर्माण की प्रयोगशाला, व्यायामशाला तथा समाज निर्माण की सक्रिय, मजबूत इकाई कहा है। जो लोग युग निर्माण की ईश्वरीय योजना में सार्थक, सुनिश्चित, टिकाऊ योगदान करना चाहते हैं, उन्हें परिवारों को युगऋषि द्वारा बतलाई गई उक्त परिभाषाओं के अनुरूप बनाना चाहिए।

सृजनकार्य कामनाओं के ख्वाब देखने से नहीं सधते, उसके लिए तो तप और कौशल का विकास और प्रयोग करना होता है। परिवार में ऐसा वातावरण बनाना होता है, जो जाने-अनजाने सभी के मन-अंतःकरण पर धीरे-धीरे अपना प्रभाव छोड़ता रहें।

ऐसा वातावरण घर-परिवार में बनाने के लिए ऋषि ने पाँच सूत्र दिए हैं :- १. पूजा स्थल पर नमन-वन्दन २. सामूहिक प्रार्थना का क्रम ३. पारिवारिक सत्संग ४. नित्य प्रणाम-अभिनन्दन का क्रम तथा ५. बलिवैश्व प्रक्रिया का पालन। इनके उद्देश्य और स्वरूप निम्नानुसार हैं :-

१. नमन-वन्दन :- घर के किसी उपयुक्त स्थल पर पूजा का छोटा-बड़ा स्थान हो। वहाँ गायत्री माता का चित्र रहे अथवा परम्परागत पूजागृहों में कम से कम गायत्री महामंत्र की स्थापना हो। जो सदस्य नियमित उपासना करते हों, वे उपासना क्रम में गायत्री मंत्र का जप अवश्य करें। मंत्र जप अथवा इष्टनाम-जप के साथ भावना करें **''हे परमात्मा! हम सबको सद्‌बुद्धि दें, उज्ज्वल भविष्य के मार्ग पर आगे बढ़ाएँ।''** परिवार के बाकी सदस्य अपने मुख्य कार्य पर जाने से पहले या भोजन से पहले वहाँ मस्तक झुकाकर अपने लिए और सबके लिए उज्ज्वल भविष्य की प्रार्थना करके जायें।

पू. गुरुदेव ने कहा है *''मनुष्य महान है, और उससे भी महान है उसका सृजेता।''* उसके साथ भावभरा सम्पर्क बनाये रहने से व्यक्ति के अंदर महानता के बीज विकसित होने लगते हैं।

२. सामूहिक प्रार्थना :- अनुभवी संतों का मत है कि जो एक साथ प्रार्थना करते हैं, वे आपस में प्यार-सहकार पूर्वक साथ-साथ बने रहते हैं। हो सके तो रोज शाम को, नहीं तो कम से कम सप्ताह में एक बार साथ-साथ प्रार्थना, आरती, भजन करें। पाँच या एक दीपक जलाकर दीपयज्ञ के साथ यह क्रम सरसता एवं सरलता से चल जाता है। क्रम पूरा होने पर सब अपने से बड़ों को प्रणाम करें, बड़े छोटों को स्नेह-आशीष प्रदान करें।

३. पारिवारिक सत्संग :- इसे भी नित्य या साप्ताहिक सत्संग के साथ जोड़ा जाना उपयोगी रहता है। स्थिति के अनुसार अलग से भी इसका क्रम चलाया जा सकता है। आजकल फिल्म, टीवी, विभिन्न घटनाक्रमों आदि से हीन विचारों का आक्रमण तो होता ही रहता है। उनसे बचने का उपाय यही है कि घर-परिवार में सत्संग, कथाओं, उदाहरणों के माध्यम से मन-मस्तिष्क में अच्छे विचारों, भावों का संचार किया जाता रहे।

४. नित्य प्रणाम-अभिनन्दन :- सबेरे उठकर अथवा स्नान या पूजा के बाद अपने से सभी बड़ों को झुककर प्रणाम करें। बड़े छोटों को स्नेह-आशीष देते हुए उनके द्वारा किए गये अच्छे कार्यों की सराहना करें या वैसी प्रेरणा दें।

५. बलिवैश्वदेव प्रक्रिया :-यह यज्ञ का ऐसा सुगम स्वरूप है, जिसे हर कोई सहजता से कर सकता है। इसके अन्तर्गत पकाए गये भोजन का एक अंश यज्ञ भगवान को अर्पित करने के बाद ही भोजन किया/कराया जाता है।

असाधारण महत्त्व

एक मान्य कहावत है 'जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन' अन्न के स्थूल गुणों से शरीर का पोषण होता है तथा उसके अंदर सन्निहित सूक्ष्म भावों-संस्कारों के अनुरूप मन का विकास होता है। अन्न में यज्ञीय भावना और यज्ञीय प्रक्रिया से श्रेष्ठ मन बनाने योग्य संस्कार स्थापित किए जा सकते हैं।

स यद्वैश्वदेवेन यजते। अग्निरेव तर्हि भवत्यग्नेरेव सायुज्य . सलोकतां जयति ..। -शतपथ २.६.४.८

अर्थात् जो भी व्यक्ति वैश्वदेव यज्ञ करता है, वह अग्नि ही हो जाता है और अग्नि के सायुज्य और

सालोक्य को प्राप्त करता है।

सायं प्रातर्वैश्वदेवः कर्त्तव्यो बलिकर्म च।

अनश्नतापि कर्त्तव्यमन्यथा किल्बिषी भवेत्॥

प्रातःकाल एवं सायंकाल भोजन से पहले बलिवैश्वदेव करना चाहिए। अन्यथा पाप-भाजन बनाना पड़ता है।

श्रुति का निर्देश है कि भोजन बनाकर केवल अकेले खाने वाला पाप ही खाता है-

'केवलाघो भवति केवलादी'

-ऋग्वेद २०.२२७.६

मनुष्य के जीवन में यज्ञ का महत्त्व तथा यज्ञीय संस्कार युक्त भोजन के बारे में गीता का मत भी बहुत स्पष्ट है-

सहयज्ञाः प्रज्ञाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।

अनेन प्रसविष्यध्वमेष वो ऽ स्त्विष्टकामधुक्॥ -गीता ३/१०

प्रजापति ने यज्ञ और प्रजा को साथ-साथ सृजा, प्रजा से कहा तुम यज्ञ की आराधना करो। यह तुम्हारी आवश्यकताएँ पूर्ण करेगा।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।

तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः॥ -गीता ३/१२

यज्ञ द्वारा प्रसन्न किये गये देवता तुम्हें इष्ट भोग प्रदान करेंगे। इन देव-अनुदानों को जो उन्हें भेट किये बिना ही भोगने लगे, वह चोर है।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।

भुंजते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥ -गीता३/१३

यज्ञों में शेष बचे हुए अन्न को खाने वाले सज्जन-पाप कर्मों से छूट जाते हैं। जो केवल अपने लिए ही पकाते-खाते हैं, वे पाप ही खाते है।

आहार यज्ञीय संस्कार युक्त रहने के सम्बन्ध में कुछ अन्य उदाहरण देखें-

नार्यमणं पुष्यति नो सखायं

केवलाघो भवति केवलादी। -ऋग्वेद १०.११७.६

मनुष्यों और देवताओं के बीच का सम्पर्क सूत्र यज्ञ ही है। उसको सुदृढ़ बनाने के लिए पहले हवन करें तब खायें।

विघशीसा भवेन्नित्यं नित्यं वामृतभोजनः।

विघसो भुक्तशेषं तु यज्ञशेषं तथामृतम्॥ -मनु. ३.२८५

धर्म-धारणाओं का पोषण करने के उपरान्त बचा हुआ अन्न विघस कहलाता है। यज्ञ के बचे हुए को अमृत कहते हैं। मनुष्य को 'विघस' एवं अमृत का ही भोजन करना चाहिए।

अघं स केवलं भुंक्ते यः पचत्यात्मकारणात्।

यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते॥ -मनु. ३.११८

सज्जन यज्ञ से बचे हुए को ही खाते हैं। जो अपने लिए ही कमाता-खाता है, वह तो पाप ही खाता है।

यह उदार-परमार्थ-परायणता जन-जन के मन-मन में बनी रहे। उस मानवी धर्म कर्त्तव्य का नित्य स्मरण बना रहे, इसलिए नित्य उद्‌बोधन के रूप में बलिवैश्व करना होता है।

बलिवैश्व संक्षिप्त नाम है। पूरा शब्द है-बलिवैश्व देव। इसमें तीन शब्दों का समावेश है। बलि-वैश्व-देव। इनका अर्थ इस प्रकार होताा है। बलि-उपहार, अनुदान। वैश्व-सबके लिए। देव- दिव्य प्रयोजनों के लिए। तीनों को मिला कर बनता है-बलि वैश्व देव अर्थात् उच्च उद्देश्यों के लिए, सार्वजनिक हित साधना के लिए प्रस्तुत किया गया अनुदान।

बलिवैश्व प्रक्रिया का महत्त्व जितना अधिक है, उसका विधिविधान उतना सरल है, इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए युगऋषि वाङ्मय क्र. २६/६.५ में लिखते हैंः-

दैनिक उपासना में अकेला गायत्री जप ही पर्याप्त नहीं। उसके लिए अग्निहोत्र भी साथ चलना चाहिए। यहाँ यह कठिनाई सामने आती है कि हवन में समय लगता है-वस्तुएँ भी अनेकों इकट्ठी करनी पड़ती है। विधान

से सभी अवगत भी नहीं होते, खर्च भी पड़ता है। इन चारों कठिनाइयों के लिए एक सुगम परम्परा बलि-वैश्व की चली आती है। उसे इन दिनों विस्मृत एवं उपेक्षित कर दिया गया है। आवश्यकता इसकी है कि उसका भी महत्त्व समझा जाय और गायत्री परिवार में उसे प्रचलित-पुनर्जीवित किया जाए।

दीपक का आर्थिक मूल्य कितना ही स्वल्प क्यों न हो, रात्रि के सघन अंधकार में बिना ठोकरें खाये निर्वाह करने तथा कुछ महत्त्वपूर्ण कृत्य कर सकने की क्षमता उसी आलोक से उपलब्ध होती है। दैनिक अग्निहोत्र की संक्षिप्ततम प्रक्रिया बलि-वैश्व के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। आवश्यकता न होने पर भी रात्रि के आरम्भ में दीपक जलाने की परम्परा है। इसमें प्रकाश के प्रति श्रद्धाभिव्यक्ति का भाव है। ठीक इसी प्रकार बलि-वैश्व के रूप में अग्निहोत्र का संक्षिप्त अभिवन्दन-प्रचलन समझा जा सकता है। गायत्री जप की तरह ही बलि-वैश्व को भी उपासनापरक दैनिक धर्म-कृत्य माना गया है और विधान है कि इन दोनों को करने के उपरान्त ही भोजन ग्रहण किया जाय। इस प्रकार के प्रतिबन्ध से एक तो मर्यादा बनी रहती है, दूसरे यह अनुभव होता रहता है कि प्रस्तुत निर्धारण को भोजन जैसी अनिवार्य आवश्यकता से भी अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाय।

स्पष्ट है कि जिसका जितना महत्त्व समझा जाता है, उसे उतना ही गहराई और बारीकी से समझने की चेष्टा की जाती है। जिसको मान मिलेगा, जिसका मूल्यांकन होगा, उसे अपनाया भी जायगा। गायत्री रूपी सद्‌बुद्धि और यज्ञ रूपी सत्कर्म को जीवन क्रम में घुला लेने के उपरान्त सर्वतोमुखी प्रगति का द्वार-खुलना सुनिश्चित है। इन्हीं दो कदमों को उठाते हुए पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचना और बीच-बीच के विरामों पर एक से एक बढ़ी-चढ़ी भौतिक एवं आत्मिक सफलताएँ-सिद्धियाँ प्राप्त करते चलना संभव हो सकता है।

संध्या वन्दन के रूप में गायत्री उपासना और दैनिक अग्निहोत्र के रूप में उपरोक्त पाँच आहुतियाँ हमारे समस्त परिवार में चल पड़नी चाहिए। हर परिवार में गायत्री उपासना का वातावरण रहे और बलिवैश्व के रूप में अग्निहोत्र होता रहे, तो समझा जायगा कि गायत्री माता और यज्ञ पिता के युग्म का पूजा-विधान ठीक तरह चल रहा है।

दैनिक यज्ञ का विधान सामान्य भोजन की पाँच आहुतियाँ देने जैसा सरल कर देने पर भी उसके मूल तत्त्व ज्ञान में कोई अन्तर नहीं आता। हर कर्मकाण्ड के पीछे उच्चस्तरीय तत्त्वज्ञान का समावेश रहता है। बलि-वैश्व दैनिक यज्ञ के पीछे भी एक दर्शन है। वह यह कि परमार्थ प्रयोजन को जीवन चर्चा में घुला कर रखा जाय। मात्र पेट के लिए ही न जिया जाय। अपने श्रम, समय, ज्ञान, मनोयोग जैसे साधन उतने ही निजी उपयोग में लिये जायँ, जितना कि औसत भारतीय के निर्वाह में प्रयुक्त होता है। शेष को पिछड़ों को उठाने और सत्प्रयत्नों को आगे बढ़ाने में लगा दिया जाय। बलिवैश्व के दो पक्ष हैं, एक पक्ष में सत्प्रवृत्तियों का संवर्धन और दूसरा है पिछड़ों की सहायता। सहृदयता, सज्जनता के पीछे यही दो उद्देश्य प्रधान रहते हैं। यही उद्देश्य बलि-वैश्व के भी हैं।

सुगम विधि-विधान

बलिवैश्व की महत्ता बहुत बड़ी है और विधि-विधान बहुत सुगम है। इसे घर में गृहणियाँ बड़ी सहजता से कर सकती हैं। प्रक्रिया इस प्रकार हैः- इष्ट देव को भोग लगाने के भाव से सफाई एवं पवित्र भावना के साथ भोजन पकाया जाय।

-पकाए हुए भोजन में से नमक, मिर्च-मसाले वाले पदार्थ छोड़कर, फीके या मीठे पदार्थों में से थोड़ा सा अंश एक साफ तश्तरी में निकाल लें। उसमें थोड़ा-सा घी, शक्कर अथवा हवन सामग्री मिलाकर उसकी बड़े चने के आकार की ५ गोलियाँ बना लें।

-यदि चूल्हे में ईधन जलाकर भोजन बनाया गया है, तो उसमें से कुछ अंगारे किसी मिट्टी के सकोरे या धातु के चौड़े पात्र में रख लें। फिर नीचे लिखे क्रम से पाँच आहुतियाँ भावनापूर्वक दें । गायत्री मंत्र बोलकर स्वाहा के साथ पहली आहुति होमें तथा कहें-

इदं ब्रह्मणे इदं न मम। दूसरी आहुति इसी प्रकार होमकर कहें-**इदं देवेभ्यः इदं न मम।** तीसरी आहुति के बाद कहें- **इदं ऋषिभ्यः इदं न मम।** चौथी आहुति के बाद कहें-**इदम् नरेभ्यः इदं न मम।** पाँचवी आहुति के बाद कहें- **इदं भूतेभ्यः इदं न मम।**

पाँचों आहुतियों के बाद अग्नि के चारों ओर जल घुमा कर हवन पात्र को एक ओर रख दें। अन्न भस्म हो जाने तथा अग्नि शांत हो जाने पर उस भस्म को तुलसी के गमले या किसी पवित्र स्थल पर वृक्ष की जड़ में डाल

दें।

यदि स्टोव पर या गैस के बर्नर पर भोजन पकाया जाता है, तो भी यह आहुतियाँ सहजता से दी जा सकती हैं। लोहे की मजबूत जाली वाली छन्नी को लौ के ऊपर करके आहुतियाँ डाली जा सकती हैं। कोई धातु का कम गहरा पात्र सँड़ासी से पकड़ कर लौ पर करे अथवा सब्जी चलाने के धातु के चमचे, जिसमें बघार आदि लगाए जाते हैं, उसे लौ पर रखकर आहुतियाँ दी जा सकती हैं। शांतिकुंज में तांबे का एक ऐसा पात्र भी तैयार किया गया है, जिसे गैस पर रख कर उसमें आहुतियाँ समर्पित की जा सकती हैं। सभी प्रयोग करके देखे गये हैं, सफल है। अपनी सुविधानुसार किसी को भी अपनाया जा सकता है।

पंच महायज्ञ

बलिवैश्व की ५ आहुतियाँ को तत्त्वदर्शियों ने पंच महायज्ञ की संज्ञा दी है। इस कथन का स्पष्टीकरण देते हुए युगऋषि ने वाङ्मय-२६/६.२ एवं ६.३ में लिखते हैं-बलिवैश्व की पाँच आहुतियों को 'पंच महायज्ञ' क्यों कहा गया है? बोल-चाल की भाषा में किसी शब्द के साथ महा शब्द लगा देने से उसका अर्थ बड़ा-बहुत बड़ा हो जाता है। यज्ञ शब्द से भी सामूहिक अग्निहोत्र का बोध होता है, फिर महा शब्द लगा देने का अर्थ यह होता है कि कोई विशालकाय आयोजन होना चहिए। प्रायः १०० कुण्डी, २५ कुण्डी यज्ञ आयोजनों को महायज्ञ की उपाधि से विभूषित किया जाता है। फिर आहार में से छोटे-छोटे पांच ग्रास निकालकर आहुतियाँ दे देने मात्र की दो मिनट में सम्पन्न हो जाने वाली क्रिया को महायज्ञ नाम क्यों दिया गया? इतना ही नहीं, हर आहुति को महायज्ञ की संज्ञा दी गई ऐसा क्यों? यदि बलिवैश्व महायज्ञ नाम दिया जाता है, तो कम से कम उससे इतना बोध तो होता है कि पाँच आहुतियाँ वाला कोई बड़ा आयोजन है। पंच महायज्ञ नाम देने से तो यह अर्थ निकलता है कि अलग-अलग पाँच महायज्ञ का कोई सम्मिलित आयोजन हो रहा होगा। इसका तात्पर्य किसी अत्यधिक विशालकाय धर्मानुष्ठान जैसी व्यवस्था होने जैसा ही कुछ निकलता है। इतने छोटे कृत्य का नाम इतना बड़ा क्यों रखा गया? यह वस्तुतः एक आश्चर्य का विषय है। नामकरण की यह विसंगत भूल ऋषियों ने कैसे कर डाली, यह बात अनबूझ पहेली जैसी लगती है।

वस्तुस्थिति का पर्यवेक्षण करने से तथ्य सामने आ जाते हैं और प्रकट होता है कि यहाँ न कोई भूल हुई है और न कोई विसंगति है। अन्तर इतना ही है कि कृत्य के स्थान पर तथ्य को प्रमुखता दी गई है। दृश्य के स्थान पर रहस्य को-प्रेरणा-प्रकाश को-ध्यान में रखा गया है। साधारणतया दृश्य को, कृत्य को प्रमुखता देते हुए नामकरण किया जाता है, किन्तु बलि-वैश्व की पाँच आहुतियों के पीछे जो प्रतिपादन जुड़े हुए हैं, उन पाँचों को एक स्वतंत्र यज्ञ नहीं-महायज्ञ माना गया है। स्पष्टीकरण की दृष्टि से हर आहुति को एक-एक स्वतंत्र नाम भी दे दिया गया है।

पाँच आहुतियों को जिन पाँच यज्ञों का नाम दिया गया है, उनमें शास्त्रीय मतभेद पाया जाता है। इन मतभेदों के मध्य अधिकांश की सहमति को ध्यान में रखा जाय, तो इनके नाम १. ब्रह्म यज्ञ २. देव यज्ञ ३. ऋषियज्ञ ४. नर यज्ञ ५. भूत यज्ञ ही प्रमुख रूप से रह जाते हैं। मोटी मान्यता यह है कि जिस देवता के नाम पर आहुति दी जाती है, वह उसे मिलती है, फलतः वह प्रसन्न होकर यज्ञकर्त्ता को सुख-शांति के लिए अभीष्ट वरदान प्रदान करते हैं।

यहाँ देवता शब्द का तात्पर्य समझने में भूल होती रहती है। देवता किसी अदृश्य व्यक्ति जैसी सत्ता को माना जाता है, पर वस्तुतः बात वैसी है नहीं। देवों का तात्पर्य किन्हीं भाव शक्तियों से है, जो चेतना तरंगों की तरह इस संसार में एवं प्राणियों के अन्तराल में संव्याप्त रहती हैं। साधारणतया वे प्रसुप्त पड़ी रहती हैं और मनुष्य सत्शक्तियों से, सद्भावनाओं से और सम्प्रवृत्तियों से रहित दिखाई पड़ता है, इस प्रसुप्ति को जागृति में परिणत करने वाले प्रयासों को देवाराधन कहा जाता है। अनेकानेक धर्मानुष्ठान, योग-साधन, तप-विधान, मंत्राराधन इन देव प्रवृत्तियों को प्रखर-सक्रिय बनाने के लिए ही किये जाते हैं। जो प्रतीक के माध्यम से प्रेरणा-प्रयोजन तक पहुँच जाते हैं, उन्हीं की देवपूजा सार्थक होती है।

पंच महायज्ञों में जिन ब्रह्म, देव, ऋषि आदि का उल्लेख है, उनके निमित्त आहुति देने का अर्थ इन्हें अदृश्य व्यक्ति मानकर भोजन कराना नहीं, वरन् यह है कि इन शब्दों के पीछे जिन देव वृत्तियों का-सत्प्रवृत्तियों का-संकेत है, उनके अभिवर्धन के लिए अंशदान करने की तत्परता अपनाई जाय।

१. ब्रह्म यज्ञ का अर्थ-ब्रह्म ज्ञान आत्मज्ञान की प्रेरणा। ईश्वर और जीव के बीच चलने वाली पारस्परिक

आदान-प्रदान प्रक्रिया है।

२. देव यज्ञ का उद्देश्य है- पशु से मनुष्य तक पहुँचाने वाले प्रगति क्रम को आगे बढ़ाना। देवत्व के अनुरूप गुण-कर्म-स्वभाव का विकास विस्तार। पवित्रता और उदारता का अधिकाधिक संवर्धन।

३. ऋषि यज्ञ का तात्पर्य है- पिछड़ों को उठाने में संलग्न करुणार्द्र जीवन-नीति। सदाशयता संवर्धन की तपश्चर्या। पूर्व पुरुषों-ऋषियों के आदर्शों को आत्मसात् करना।

४. नर यज्ञ की प्रेरणा है-मानवी गरिमा के अनुरूप वातावरण एवं समाज-व्यवस्था का निर्माण। मानवी गरिमा का संरक्षण नीति और व्यवस्था का परिपालन, नर में नारायण का उत्पादन। विश्व मानव का श्रेय-साधन।

५. भूत यज्ञ की भावना है-प्राणि मात्र तक आत्मीयता का विस्तार-अन्याय जीवधारियों के प्रति सद्भावना पूर्ण व्यवहार। वृक्ष-वनस्पतियों तक के विकास का प्रयास।

इन पाँचों प्रवृत्तियों में व्यक्ति और समाज की सर्वतोमुखी प्रगति, पवित्रता और सुव्यवस्था के सिद्धान्त जुड़े हुए हैं। जीवनचर्या और समाज व्यवस्था में इन सिद्धान्तों का जिस अनुपात में समावेश होता जाएगा, उसी क्रम से सुखद परिस्थितियों का निर्माण निर्धारित होता चला जाएगा। बीज छोटा होता है, किन्तु उसका फलितार्थ विशाल वृक्ष बनकर सामने आता है। चिनगारी छोटी होती है, अनुकूल अवसर मिलने पर वही दावानल का रूप धारण कर लेती है। गणित के सूत्र छोटे से होते हैं, पर उनसे जटिलतायें सरल होती चली जाती हैं। अणु-जीवाणु-शुक्राणु तनिक से होते हैं, पर जब भी उन्हें अपना पराक्रम दिखाने का अवसर मिलता है, चमत्कारी प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं।

बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ का दृश्य स्वरूप तो तनिक-सा है, पर उनमें जिन पाँच प्रेरणा सूत्रों का समावेश है, उन्हें व्यक्ति और समाज की सर्वतोमुखी प्रगति के आधारभूत सिद्धांत कहा जा सकता है। इनका निरंतर ध्यान रहे, इनके अनुरूप जीवन की नीति एवं समाज की व्यवस्था बनाने का प्रयत्न होता रहे, उसकी स्मृति हर रोज ताजी होती रहे, इसके लिए पाँच आहुतियाँ देकर पाँच आदर्शों की प्रतीक-पूजा को महत्त्वपूर्ण माना गया है।

यज्ञकर्त्ता बलिवैश्व कर्म करते हुए इन पाँचों के अनुग्रह-वरदान की अपेक्षा करता है। यह आशा तब निस्संदेह पूरी हो सकती है, जब आहुतियों के पीछे जो उद्देश्य सन्निहित है, उन्हें व्यवहार में उतारा जाय। इन्हीं उत्कृष्टताओं का व्यापक प्रचलन-अवलम्बन इस पंच महायज्ञ प्रक्रिया का मूलभूत प्रयोजन है। बलिवैश्व को इन्हीं देव-प्रेरणाओं का प्रतीक- प्रतिनिधि माना जा सकता है। कहना न होगा कि यह आदर्श जिस अनुपात से अपनाये जायेंगे, उसी के अनुरूप व्यक्ति में देवत्व की मनःस्थिति और संसार में स्वर्गीय परिस्थिति का मंगलमय वातावरण दृष्टिगोचर होगा। युग परिवर्तन यही है। बलि-वैश्व की प्रेरणायें प्रकारान्तर से नवयुग की सुखद सम्भावनाओं का बीजारोपण करती हैं।

गायत्री माता के एक आलंकारिक चित्रण में उनके पाँच मुख दिखाये गये हैं। यह पाँच मुख पाँच देव हैं। पंचकोश, पंचतत्व, पंचगव्य, पंचामृत, पंचरत्न, न्याय पंच, जड़ी-बूटी पंचांग आदि के कितने ही पंचक हैं। गायत्री माता के पाँच मुखों और बलिवैश्व के पंच यज्ञों के साथ उनकी विवेचना की जाती है। प्राचीन भारत की गौरव गरिमा के आधारभूत कारण उन्हीं आदर्शों का परिपालन था। नवयुग के अवतरण एवं उज्ज्वल भविष्य के निर्धारण में इन्हीं को चरितार्थ करना पड़ेगा।

महिलाएँ बलिवैश्व की प्रक्रिया बड़ी आसानी से चलाती रह सकती हैं। यज्ञावशिष्ट परोसे जाने का अपना महत्त्व है। इसमें अपनी महान् सांस्कृतिक परम्परा का निर्वाह होता है। साथ ही यज्ञ में बने हुए को ही खाने का तत्त्व दर्शन समझने-समझाने एवं हृदयंगम करने से व्यक्ति एवं समाज की सर्वतोमुखी सुख-शान्ति-प्रगति समृद्धि का द्वार खुल सकता है। देकर खाने-मिल बाँट कर उपयोग करने की नीति को देववृत्ति कहते हैं। यह जहाँ भी, जितने अंश में भी प्रयुक्त होगी, वहाँ उसी अनुपात से सदाशयता बढ़ेगी। कहना न होगा कि सदाशयता ही सर्वतोमुखी प्रगति की आधारशिला है। सतयुग की-स्वर्णिम युग की सुखद संभावनाओं का आशा-केन्द्र उसी को समझा जा सकता है।

बलिवैश्व के क्रिया-कृत्य का स्वरूप कितना ही छोटा क्यों न हो, उसके पीछे यही प्रेरणाएँ भरी पड़ी हैं, जिन्हें अपनाने के कारण अपने देश के नागरिक देव-मानव कहलाने का श्रेय-सौभाग्य प्राप्त करते रहें हैं। कृत्य चलता रहे, तो उसकी व्याख्या होने तथा अपनाये जाने की भी आशा बनी रहेगी। अन्यथा जड़ कट जाने पर तो संभावनाएँ ही समाप्त हो जाती हैं। घास गर्मियों में सूख जाती है, पर जमीन में उसकी जड़ जमी रहती है। वर्षा होते ही वे सूखी जड़ें, फिर हरी हो जाती हैं। बलिवैश्व परम्परा को यदि कृत्य रूप में भी बनाये रखा जाय, तो प्रेरणाएँ सूखी जड़ों की तरह भी जीवन्त रह

सकती हैं और समयानुसार उनकी हरीतिमा को धरती पर छा जाने की अपेक्षा की जा सकती है। यह धर्म-कृत्य यदि घर की महिलाओं को सौंपा जा सके-उसका पुण्य-फल उन्हें समझाया जा सके, तो यह विश्वास किया जा सकता है कि बलिवैश्व की विस्मृत परम्परा फिर से जीवन्त हो सकने में तनिक भी कठिनाई नहीं पड़ेगी।

बलिवैश्व के लिए महिलाओं को प्रोत्साहन देने के प्रसंग में एक बात और भी जोड़कर रखी जा सकती है कि आँगन में तुलसी का बिरवा लगाने की धर्म-परम्परा को भी लगे हाथों पुनर्जीवित करने का काम हाथ में ले लिया जाय। छोटा सा कलापूर्ण थाँवला बनाकर उस पर तुलसी का बिरवा लगाया जाय। सूर्यार्घ्यदान का जल उसी में डाला जाय। थाँवले में दीपक रखने के लिए चारों तरफ छोटे झरोखे छोड़ दिये जाँय, ताकि वर्षा या तेज हवा होने पर भी उनमें सायंकाल को घृत दीपक जलाकर रखा जा सके। घरों में गायत्री माता का चित्र स्थापित करने उसके सम्मुख नमन, वन्दन की परम्परा चलाने से घर के वातावरण में धार्मिकता की मात्रा बढ़ती है और उसका प्रभाव प्रकारान्तर से परिवार के सभी सदस्यों पर ऐसा पड़ता है, जो उनके व्यक्तित्व और भविष्य में सुखद संभावनाओं वाले तत्त्वों का अनुपात बढ़ा सके। इसी श्रृंखला में तुलसी का बिरवा लगाने की बात आती है। बलिवैश्व का प्रचलन जहाँ चल पड़े, वहाँ तुलसी का बिरवा लगाने-देव मन्दिर की तरह थाँवला बनाने का प्रचलन भी अग्रगामी बनाया जा सकता है।

महत्व समझें-आगे बढ़े

पू. गुरुदेव ने वां २६/६.१०एवं ११ पर इस प्रक्रिया को घर-घर स्थापित करने की अपील करते हुए लिखा हैः- प्रश्न साधन जुटाने का नहीं है, मूल बात महत्त्व समझने और ध्यान देने की है। बालों को सँभालने के लिए साबुन, तेल, कंघी, दर्पण आदि की आवश्यकता पड़ती है और उस साज-सामान में समय भी लगता है। दैनिक हजामत बनाने में भी कई तरह के उपकरण इकट्ठे करने पड़ते हैं और समय तथा सतर्कता भी लगती है। इन दोनों कामों में कुछ न कुछ तो पैसा भी खर्च हो ही जाता है। बलिवैश्व में इन दोनों कामों से अधिक न तो समय लगेगा न साधन जुटानें होंगे और न खर्च ही पड़ेगा। अनख इसलिए नहीं लगता कि इनमें झंझट बहुत हैं, पर खर्च पड़ेगा-यह कहना महत्त्व न समझ पाने के कारण है। श्रद्धा का पलायन हो जाने से ही यह बहानेबाजी उत्पन्न होती है। आलस्य उसका मौन समर्थन करता है। आजकल नास्तिकता भी फैशन एवं प्रगतिशीलता का एक अंग बन गई है। उच्छृंखलता अपनाने की तरह अनास्था अपनाने को भी बहादुरी की ही किस्म गिना जाता है। इन्हीं हवाओं का प्रभाव सामान्य मस्तिष्कों पर पड़ता है और अनास्था उत्पन्न होती है। वस्तुतः यह आस्था संकट ही है जो साधारणतया धर्म मान्याताओं के प्रति उपेक्षा के रूप में दृष्टिगोचर होता है और विशिष्ट स्थितियों में विद्रोह बन कर ध्वंसात्मक आचरण करने, अवज्ञा बरतने पर उतारू दीखता है।

मोटी दृष्टि से देखने में बलिवैश्व का बहुत अधिक महत्त्व दिखाई नहीं पड़ता। उसे करने में न कोई बड़ा लाभ होता है और न करने पर किसी बड़ी हानि की संभावना दिखाई पड़ती। पर यदि बारीकी से देखा जाय, तो प्रतीक तुच्छ होते हुए भी उसके पीछे काम करने वाली प्रेरणा अति महान है। प्रश्न आस्था की प्रतिष्ठापना का है। धर्मकृत्य तो उसके प्रतीक भर होते हैं। इसलिए उसका नाम भी प्रतीक-पूजा ही है। प्रतीक अर्थात् प्रतिनिधि देवताओं की आकृतियाँ एवं प्रतिमाएँ आँख से देखने पर कौतुक-कौतूहल जैसी लगती हैं, पर उनके पीछे श्रद्धा को जगाने और बढ़ाने वाले जो तत्व जुड़े हुए हैं, उन्हीं को शास्त्रकारों ने प्राण-प्रतिष्ठा कहा है। प्राण-प्रतिष्ठा न होने से प्रतिमायें खिलौना भर रह जाती हैं। देवत्व तो श्रद्धा में ही सन्निहित है। बलिवैश्व को देव-प्रतिमा और उसके क्रिया-कृत्य को देवाराधन माना जाए, तो निश्चय ही उससे वही उद्देश्य पूरा होगा, जो विशालकाय धर्मानुष्ठानों का होता है।

वर्तमान युग में आस्था संकट ही समस्त विपत्तियों का तात्विक कारण है। अनास्था ने ही उत्कृष्टता एवं आदर्शवादिता की मान्यताओं और परम्पराओं को उलट दिया है, फलतः मनुष्य जाति के सामने अगणित विभीषिकाएँ उठ खड़ी हुई हैं। उज्ज्वल भविष्य की संरचना के लिए युग परिवर्तन के लिए-आस्था संकट से जूझना ही प्रमुख कार्य है। उसी दिशा में एक रचनात्मक कदम बलिवैश्व परम्परा का पुनर्जीवन भी है।

घर-घर हो यज्ञ भगवान की प्रतिष्ठापना

मित्रो! यह यज्ञ भगवान हैं, जो प्रत्यक्ष हैं और आपके हाथ का भोजन करने में समर्थ हैं। यह आपको प्रकाश देते हैं, गरमी देते हैं, ज्ञान देते हैं और आपके उज्वल भविष्य की संभावना का आश्वासन देते हैं। ऐसे हैं यज्ञ भगवान, जिनको हम व्यापक बनाना चाहते हैं, जिनका हम पूजन करना चाहते हैं और जिनको हम जनमानस में प्रतिष्ठापित करना चाहते हैं। आप भी उसी का प्रचार-विस्तार करने के लिए जाइए। अपने घरों में बलिवैश्व के रूप में इन यज्ञ भगवान की प्रतिष्ठापना कीजिए और समाज में इनकी परंपरा को फैलाने के लिए प्राणपण से प्रयत्न कीजिए। **- पू0 गुरुदेव की अमृतवाणी, अखण्ड ज्योति जुलाई 2008 पृ. 52**